Inspira- Journal of Modern Management & Entrepreneurship (JMME)
ISSN : 2231–167X (Print), Impact Factor: (Cosmos: 7.866 & I2OR: 5.675) Volume 16, No. 01(II), January-March, 2026, pp. 49-56

संस्कृत और पौराणिक साहित्य के आलोक में पर्यावरणीय चिन्तन

डॉ. मिथिलेश कुमार*

अतिथि सहायक प्राध्यापक, स्नातकोत्तर संस्कृत विभाग, पटना विश्वविद्यालय, पटना।

*Corresponding Author: mithilesh96081@gmail.com

***Citation**: कुमार, मिथिलेश. (2026). संस्कृत और पौराणिक साहित्य के आलोक में पर्यावरणीय चिन्तन. Journal of Modern Management & Entrepreneurship, 16(01(II)), 49–56.*

सार

संस्कृत एवं पौराणिक साहित्य में पर्यावरणीय चिंतन का विशेष स्थान है। प्राचीन भारतीय मनीषियों ने प्रकृति को दिव्यता के रूप में स्वीकार किया और उसके संरक्षण को धर्म का अंग माना। वेदों, उपनिषदों, पुराणों तथा महाकाव्यों में पृथ्वी, जल, वायु, अग्नि और आकाश को पंचमहाभूत कहा गया है, जिनसे समस्त सृष्टि का निर्माण होता है। ऋग्वेद में पर्यावरण के संतुलन को मानव जीवन की आधारशिला माना गया है– जैसे 'माता भूमिः पुत्रोऽहं पृथिव्याः'के माध्यम से पृथ्वी को माता के रूप में पूजनीय बताया गया। अथर्ववेद में वृक्षों, नदियों, पर्वतों और पशु–पक्षियों के प्रति श्रद्धा और संरक्षण का संदेश दिया गया है। भागवत पुराण और महाभारत में भी वनस्पतियों और जल स्रोतों के दुरुपयोग को अधर्म कहा गया है। प्रकृति और मानव के बीच संतुलन ही सुख–समृद्धि का मूल माना गया है। इस प्रकार, संस्कृत और पौराणिक साहित्य में पर्यावरणीय चिंतन केवल दार्शनिक विषय नहीं, बल्कि जीवन–मूल्यों से जुड़ा हुआ है। यह मानव को पर्यावरण के साथ सह–अस्तित्व और संरक्षण की प्रेरणा देता है, जो आज के वैश्विक पर्यावरण संकट में अत्यंत प्रासंगिक है।

***शब्दकोशः** वैश्विक साहित्य, पर्यावरण प्रेम, पर्यावरण चेतना, स्रोतसामस्मि जाह्नवी, सामाजिक चिन्तन।*

प्रस्तावना

वैदिक साहित्य के उपरान्त जो साहित्यिक परम्परा निःसृत हुई, पर्यावरण और सामाजिक चिन्तन की दृष्टि से वह वैदिक वाङ्मय से संस्कारित होकर ही आगे बढ़ी। संस्कृत साहित्य ने अनेक धार्मिक एवम् लौकिक ग्रन्थों को समाज की धरोहर बनाया जो बृहत् साहित्यिक परम्परा के रूप में आज भी विद्यमान है। संस्कृत साहित्य, वैदिक साहित्य के उस संस्कार को लेकर अग्रसर हुआ जिसमें प्रकृति को मनुष्य के धार्मिक, नैतिक, आध्यात्मिक संस्कारों से सम्बद्ध किया गया है। प्रकृति के मूलभूत पंच महाभूतों को इस साहित्य में समुचित स्थान मिला है तथा इनके भली–भाँति संरक्षण एवम् संवर्द्धन की परम्परा का निर्माण किया गया है। संस्कृत साहित्य की वैभवशाली दीर्घ परम्परा में कवियों, आचार्यों तथा विचारकों की लम्बी श्रृंखला है जिसमें बाल्मीकि, कालिदास, व्यास, मनु, भारवि, भास, भवभूति, वाणभट्ट आदि अनेक कवि हैं। इन कवियों ने अपने वाङ्मय में पर्यावरण प्रेम का जो प्रदर्शन किया है, वह वैश्विक साहित्य में अद्वितीय हैं। जल, थल, वायु, वनस्पति, आकाश आदि

* *Copyright © 2026 by Author's and Licensed by Inspira. This is an open access article distributed under the Creative Commons Attribution License which permits unrestricted use, distribution, and reproduction in any medium, provided the original work properly cited.*

पर्यावरणीय कारकों के संरक्षण व संवर्द्धन का विशद चिन्तन संस्कृत साहित्य के मनीषियों ने अपनी सूक्ष्म दृष्टि से करके इन्हें प्रमुख विषय के रूप में स्थापित किया है।

मनु ने प्रकृति के महत्वपूर्ण कारक जल को भौतिक, आध्यात्मिक, मानसिक एवम् शारीरिक शुद्धि का श्रेष्ठ साधन स्वीकार किया है तथा नदी, जलाशय आदि को दूषित करने वालों के लिए दण्डनीय प्रावधान का चिन्तन प्रस्तुत करते हुए पानी में मल मूत्र, थूक अथवा अन्य दूषित पदार्थ, रक्त या विष के विसर्जन को निषिद्ध बताया है–

नात्सु मूत्रं पुरीषं वाष्ठि वनं समुत्सृजते ।
अमेध्यालिप्तमन्यद्धा लोहितं वा विषाणि वा ।।

(मनुस्मृति 4/56)

वस्तुतः जल की शुद्धता के प्रति इतना व्यापक चिन्तन आज से सदियों पूर्व की संस्कृत साहित्य परम्परा में उपलब्ध है जो पर्यावरण चेतना का अप्रतिम उदाहरण है। सूर्य, आकाश, पर्वत, पृथ्वी, वायु तथा अन्तरिक्ष के साथ गंगा के जल की महत्ता विषयक सन्दर्भ के आलोक में महर्षि व्यास ने कहा है–

यथा हीनं नमोऽर्केण भूः शैलेः खं च वायुना।
तथा देशा दिशश्चौव गङ्गाहीना न संशयः ।

(महाभारत अनुशासन पर्व 26/36)

अर्थात् जैसे सूर्य के बिना आकाश, पर्वत के बिना पृथ्वी और वायु के बिना अन्तरिक्ष की शोभा नहीं होती, उसी प्रकार जो देश दिशाएँ गंगा जी से रहित हैं, उनकी भी शोभा नहीं होती, इसमें संशय नहीं है।

धार्मिक ग्रन्थों में वर्णित पर्यावरणीय चेतना हमारे सांस्कृतिक विकास की महत्वपूर्ण कड़ी के रूप में दृष्टिगोचर होती है, जो भविष्य में हमारे सांस्कृतिक, धार्मिक व सामाजिक मूल्यों के रूप में परिवर्तित हो जाती है, जिसका परिणाम विधि और न्याय के सिद्धान्त से कहीं अधिक स्थाई और स्वाभाविक है। भारतीय धर्म और दर्शन में श्रीमद्भगवद्गीता का स्थान बहुत पवित्र व आदर्श से युक्त है। गीता में श्री कृष्ण स्वयं को गंगा नदी बताते हैं –स्रोतसामस्मि जाह्नवी । (विभूतियोग, गीता 10ध्31)

इस दृष्टि से गंगा नदी का स्थान भारतीय धर्म और संस्कृति में बहुत ऊँचा है। गंगा नदी की पवित्रता और स्वच्छता को नष्ट न होने देने के धार्मिक सिद्धान्त से हमारे धर्म ग्रन्थों ने हमें बाँध दिया है। स्वच्छ नदी और जल के महत्व से तत्कालीन मनीषी भली–भाँति परिचित थे, वे इस तथ्य का उद्घोष पहले ही कर चुके थे कि प्रदूषण रहित जल साक्षात् ईश्वर शक्ति से युक्त माना है–

येनैव निःसृता गङ्गा तेनैव यमुनाऽऽगता।
योजनानां सहस्रेषु कीर्तनात् पापनाशिनी।।

(मत्स्यपुराण 108/25)

'अर्थात् जहाँ से गंगा का प्रादुर्भाव हुआ है वहीं से यमुना भी उद्भूत हुई है। ये हजार योजन दूर से भी नाम लेने से पापों का नाश करने वाली है।' लिंगपुराण में जल को जगत का प्राण स्वीकार करते हुए समस्त चराचर जगत का आधार मानते हुए स्पष्ट किया गया है, कि जल जगत के प्राण हैं, जिसमें सब भूत और भुवन हैं–

प्राणा वै जगतानापो भूतानि भुवनानि च
बहुनात्र किमुक्तेन चराचरमिदं जग ।।

(के.एल. तिवारी–एस. के. जाधव)

एक समय ऐसा था जब जलापूर्ति के लिए मानव नदियों पर ही आश्रित था। इस कारण तत्कालीन लोग नदियों की स्वच्छता एवम् पवित्रता का पूर्ण रूप से ध्यान रखते थे। महर्षि व्यास ने सरिताओं को प्राणी मात्र के पालन–पोषण का प्रमुख आधार स्वीकार करते हुए जल को विश्वमाता संज्ञा से अभिहित किया है–

विश्वस्य मातरः सर्वाः सर्वाश्चौव महाफलाः ।
इत्येता सरितो राजन्समाख्याता यथा स्मृति ।।

(महाभारत भीष्म पर्व, 9/37)

सम्पूर्ण संस्कृत और पौराणिक साहित्य में जल का विभिन्न रूपों में वर्णन है। ये सभी रूप जल के संरक्षण और संवर्द्धन के निमित्त हैं। मत्स्यपुराण में जल को साक्षात् तीर्थ रूप में आत्मसात् करने का सिद्धान्त प्रतिपादित किया है, मनुष्य के लिए जल का उतना ही महत्व है जितना तीर्थ का –

अनुद्धृतैरुद्धृतैर्वा जलैः स्नानं समाचरेत।
तीर्थ प्रकल्पयेद् विद्वान् मूलमन्त्रेण मन्त्रवित् ।।

(मत्स्यपुराण 102/02)

'कुएं एवम् तालाब आदि के जल से स्नान करते हुए मन्त्रवेत्ता विद्वान् को मूलमन्त्र द्वारा उस जल में तीर्थ की कल्पना करनी चाहिए। इतना विशद्, व्यापक और भावात्मक पर्यावरणीय चिन्तन विश्व के किसी भी साहित्य और कालखण्ड में नहीं पाया जाता जो जल के सन्दर्भ में इस प्रकार का विचार प्रस्तुत करे।

जल के समान ही संस्कृत–पौराणिक साहित्य में भूमि के प्रति भी व्यापक चिन्तन उपलब्ध होता है। भूमि एवम् प्राणी के मध्य माता–पुत्र का सम्बन्ध सर्वत्र स्वीकार किया गया है। हमारे जीवन का आधार भोजन, जल और वनस्पतियों का उद्गम स्रोत भूमि ही है, अतः इसके प्रति सम्मान का भाव संस्कृत साहित्य में सहज रूप से उपलब्ध है। पृथ्वी के विराट वैभव को स्वीकार करते हुए इस बात के लिए पृथ्वी से क्षमा याचना की जाती है कि हम अपने पाँव का स्पर्श मातृभूमि से कर रहे हैं–

समुद्र वसने देवी पर्वत स्तन मण्डले
विष्णुपत्नि नमस्तुभ्यं पादस्पर्श क्षमस्व में।

भारतीय मनीषी सही मायनों में प्रकृति के अन्वेषक थे, उन्होंने जीवन हेतु प्रकृति के तमाम तत्त्वों की आवश्यकता को पहचान लिया था। इन तत्त्वों के असन्तुलित एवम् अन्धाधुन्ध दोहन को रोकने के लिए इन्होंने अनेक उपाय किये और उनको धार्मिक जीवन मूल्य से जोड़कर स्थायी भी कर दिया। भारतीय संस्कृत साहित्य में भूमि, जल, वायु, आकाशादि महाभूतों को जीवन से अलग करके नहीं देखा गया। भारतीय दर्शन का मत तो यह है कि समस्त सृष्टि ही ईश्वर है तथा पर्यावरण के विभिन्न कारकों के रूप में प्रकट होते हैं। अतः धरती भी ईश्वरमय है, आश्रयदात्री और पालक–पोषक गुणों से युक्त होने के कारण संस्कृत साहित्य में इसे माता के समकक्ष कहा गया है। बाल्मीकि रामायण में जन्म भूमि को स्वर्ग से बढ़कर माना गया है–

जननीजन्मभूमिश्च स्वर्गादपि गरीयसी ।।

संस्कृत वाङ्मय में मनुष्य से सदैव अपेक्षा की गई है कि वह भूमि के प्रति इस प्रकार का आचरण करें कि उसके कारण भूमि के श्यामल स्वरूप में कोई विकृति उत्पन्न न हो एवम् सभी प्राणियों को अपना प्राप्य बिना किसी अवरोध के मिलता रहे।

भूमि के साथ ही वायु के संरक्षण और स्वच्छता पर व्यापक चिन्तन संस्कृत साहित्य में उपलब्ध है। वायु के शोधन, संरक्षण एवम् संवर्द्धन की जो परिपाटी वैदिक साहित्य में उपलब्ध होती है वह भाषायी कालखण्ड में

परिवर्तन के साथ–साथ विकसित होकर संस्कृत साहित्य में भी प्राप्त होती है। चरक संहिता में वायु को स्वस्थ जीवन का आधार स्वीकार करते हुए कहा गया है–

वायुरायुर्बल वायुर्कयुर्धाता शरीरिणाम् ।
वायुर्विश्वमिदम् सर्व प्रभुर्वायुश्च कीर्तितः ।।

(चरक संहिता 28/3)

अर्थात् वायु को ही आयु कहा जाता है, वायु ही शरीर का बल है। वायु की आत्मा को धारण करने वाली है, वायु ही संसार है, वायु को ही प्रभु कहा जाता है। वर्तमान परिस्थिति में लोग वायु की शुद्धता पर चिन्तन और मनन कर रहे हैं, परन्तु श्रीमद्भगवद्गीता में तो वायु की महत्ता को प्रतिपादित करते हुए इसे पवित्र करने वाला माना गया है और कहा गया है कि मैं पवित्र करने वालों में वायु हूँ–पवनः पवतास्मि। (गीता 10ध्31)

श्रीमद्भागवत्गीता में यम, अग्नि, वरूण, चन्द्रमा, सूर्य आदि देवों की स्तुति के साथ वायु की स्तुति की गयी है तथा वायु की देवरूप महिमा मानी गयी है और उसे बार–बार नमस्कार किया गया है–

वायुर्यमोऽग्निर्वरुणः शशांक प्रजापतिस्त्वं प्रतिमाहश्च ।
नमो नमस्तेऽस्तु सहस्रकृत्वः पुनश्च यूपोऽपि नमो नमस्ते ।।

(गीता 11/39)

संस्कृत साहित्य में वायु को ईश्वरीय अंश स्वीकार कर उसे मानवीय जीवनाधार माना है। पूज्यों की श्रृंखला में स्थित होने के कारण वायु सहज ही संरक्षणीय हो जाती है। वायु की सामाजिक के लिए आज का पर्यावरण चिन्तक सतत् प्रयत्नशील है। धार्मिक भावनाओं से वायु को जोड़ने का मुख्य कारण मानव के मध्य प्राकृतिक संरक्षण के स्थायीभाव की स्थापना करना है। वायु के साथ ही पेड़–पौधे भी भारतीय संस्कृति में सदैव पूज्य रहे हैं तथा इन्हें पूजन सामग्री में स्थान प्राप्त है, कभी ये पूजा के मंदिर भी थे–

एको वृक्षो हि यो ग्रामे भवेत् पर्णफलान्वितः ।
चौत्यो भवति निर्धातिरर्चनीयः सुपूजितः ।।

(महाभारत, आदि पर्व 138/25)

अर्थात् गाँव में उत्पन्न एक ही वृक्ष जब फूलों और फलों से भर जाता है और उस जाति का दूसरा वृक्ष गाँव में नहीं होता, तब वही वृक्ष चौत्य वृक्ष के रूप में पूज्य एवम् मान्य होता है।

प्रकृति में वायु–जल जो कुछ भी है, कारण कार्य सम्बन्ध से युक्त है, वह किसी न किसी रूप में जीव–जगत को परस्पर जोड़ने एवम् गतिशील रखने का कार्य करता है। इसी चराचर जगत के लिए संस्कृत वाङ्मय में श्रद्धा तथा कृतज्ञता का भाव की उत्पत्ति का मूल कारण बनता है। पौराणिक साहित्य में वृक्ष को पुत्र के समतुल्य मानकर उसके सहज संरक्षण का प्रयास किया जाता है। वृक्ष के संवर्द्धन का इससे बड़ा उदाहरण और क्या हो सकता है–

दश कूप–समोवापी दशवापी–समोह्रदः।

दश–ह्रद–समःपुत्रो, दश पुत्रसमो द्रुम।। (चौधरी, पृ. 91)

'दस कुओं के बराबर एक बावड़ी, दस बावड़ियों के बराबर एक तालाब है, दस तालाबों के बराबर एक पुत्र है और दस पुत्रों के बराबर एक वृक्ष है।' वन में रहने वाले ऋषियों की कन्याओं तक के ह्रदय में वृक्षों के प्रति इतना ममत्व का भाव था कि उनको सींचने से पूर्व स्वयं जलपान ग्रहण नहीं करती थीं। वृक्ष के सौन्दर्य पर मोहित होने पर भी वह कभी उनके पुष्प और पत्तियों को नहीं तोड़ती थीं। वृक्ष के प्रति इतना अनुराग वर्तमान

पीढ़ियों तक रह पाता तो पर्यावरण प्रदूषण की इस आपात स्थिति का सामना हमें कदापि नहीं करना पड़ता। महाकवि कालिदास द्वारा रचित अभिज्ञानशाकुन्तलम् महाकाव्य में वृक्ष के प्रति शकुन्तला का कथन दर्शनीय है–

पातुं न प्रथमं व्यवस्यति जलं युष्मास्वपीतेषुया
ना दत्ते प्रिय मण्डनापि भवतां स्नेहेन या पल्लवम् ।
आद्ये वः कुसुम प्रसूति समये यस्या भवत्युत्सवः
सेयं याति शकुन्तला पति गृहं सर्वेरनुज्ञायताम् ।। (कालिदास, 4/11)

अर्थात् – 'हे तपोवन के वृक्षों, आज वही शकुन्तला अपने पति के घर को जा रही है जिसने तुम्हें सींचने से पूर्व अपनी प्यास बुझाने की चेष्टा नहीं की, आभूषण प्रिय होने पर भी जिसने तुम्हारे स्नेह के कारण तुम्हारी पत्तियाँ नहीं तोड़ी, तुम्हारे प्रथम बार कुसुमित होने पर जिसे परमानन्द होता था आज वही पतिगृह जा रही है, उसे तुम सब आज्ञा दो।' पद्मपुराण में वृक्ष के प्रत्येक अंग को पवित्र माना गया है, अतः वृक्ष के किसी भी अवयव को तोड़ना पाप हो जाता है–

पत्रं पुष्पं फलं मूलं शाखा त्वक् स्कन्ध संज्ञितम् ।
तुलसी संभवं सर्व पावनं मृत्तिकादिकम्।।
(पद्मपुराण, उत्तरखण्ड 24/2)

'तुलसी का तो पत्ता, पुष्प, फल, जड़, डालियाँ, छाल, तना और मिट्टी आदि सभी अतिपावन हैं।' लालच में आकर वृक्ष को कभी नहीं काटना चाहिए, यह पूर्णतया वर्जित है। इसी कारण मत्स्यपुराण में वृक्षों को काटने पर दण्ड का विधान करते हुए कहा गया है–

वृक्षं तु सफलं छित्त्वा सुवर्णं दण्डमर्हति।
द्विगुणं दण्डयेच्चौनं पथि सीम्नि जलाशये ।।
(मत्स्यपुराण 227/91)

'फल युक्त वृक्ष को काटने पर अपराधी को स्वर्ण दण्ड देना चाहिए यदि वह वृक्ष किसी सीमा, मार्ग या जलाशय के समीप हो तो दण्ड दोगुना कर देना चाहिए। भारतीय संस्कृति में वृक्ष की कितनी महत्ता है इसका अनुमान इस बात से लगाया जा सकता है कि वृक्ष प्रतीक चिह्न के रूप में प्रत्येक मन्दिर में स्थापित है, वह मन्दिर भले ही अत्यन्त भीड़–भाड़ वाले महानगर में ही क्यों न हो। वृक्षारोपण करने का माहात्म्य पौराणिक साहित्य में अनेक स्थानों पर परिलक्षित होता है–

पूजने कीर्तने ध्याने रोपणें धारणे कलौ।
तुलसी दहते पापं स्वर्ग मोक्षं ददाति च।
उपदेशं ददेदस्याः स्वमाचरे पुनः।
स याति परमं स्थानं माघवस्य निकेतनम् ।।
(पद्मपुराण सृष्टिखण्ड 131 व 132)

'तुलसी के पूजन, कीर्तन, ध्यान, रोपण और धारण करने से वह स्वर्ग और मोक्ष प्रदान करती हैं। जो तुलसी लगाने का उपदेश दूसरों को देता है वह भी भगवान विष्णु के लोक को प्राप्त करता है।' तुलसी के अतिरिक्त भी अनेक वृक्षों को संस्कृत साहित्य में विशेष सम्मान प्राप्त है, क्योंकि प्रत्येक वृक्ष की अपने स्थान पर मूल्यवान उपयोगिता है। सभी वृक्ष अलग–अलग गुणों से सम्पन्न होते हैं, यथा–

अश्वत्थं च वटं चौवोदुम्बरं प्लक्षमेव च।

पलाशं जम्बुवृक्षं च विदुः षष्ठं महर्षयः ।।

(मत्स्यपुराण 56/7)

'पीपल, बरगद, गूलर, पाकड़ पलाश व छठे जामुन को महर्षिगण विशेष उपकारी मानते हैं। इन सभी वृक्षों में भी पीपल के वृक्ष को भगवान श्रीकृष्ण स्वयं का रूप स्वीकार करते हुए कहते हैं कि, 'अश्वत्थः सर्ववृक्षाणां ।।' इसी प्रकार स्कन्दपुराण में भी पीपल के वृक्ष का माहात्म्य प्रकट किया गया है–

स एव विष्णुर्दुम एवं मूर्ती महात्मभिः सेवित पुण्यमूलः ।

यस्याश्रयः पाप सहस्रहन्ता भवेन्नृणां कामदुधो गुणाढ्य ।।

(गीता 10/26)

'यह वृक्ष मूर्तिमान श्री विष्णु स्वरूप है, महात्मा पुरुष इस वृक्ष के पुण्यमय मूल की सेवा करते हैं। इसका गुणों से युक्त और कामनादायक आश्रय हजारों पापों का नाश करने वाला है।' भगवान शिव को देवाधिदेव, अखिलविश्व का पिता और आदिमानव माना गया है। इस कारण उनसे जुड़ने वाली समस्त वस्तुएं पूजनीय एवम् संरक्षणीय हैं। महाकवि कालिदास ने वृक्षों को शिव की भुजाएं कहा है, अतः शिव भुजा रूप वृक्षों के काटने से मनुष्य पाप का भागीदार हो जाता है, यथा–

पाश्चादुच्चौ भुजतरूवनं मण्डलेनाभिलीनः

सान्ध्यं तेजः प्रतिनवजपापुष्परक्तं दधानः ।।

(स्कन्दपुराण 247/43)

इस प्रकार महाकवि कालिदास प्रकृति सन्तुलन के महत्वपूर्ण वाहक वृक्ष के संरक्षण का सहज प्रयास अपने ग्रन्थों में करते दिखाई देते हैं। हम अपना जीवन निर्वाह करते समय जिनती भी क्रियाएं करते हैं, उसका फल आने वाले जन्मों में हमें प्राप्त होता है, या फिर हमारी सन्तानें इनका फल प्राप्त करती हैं। पर्यावरणीय दृष्टि से उक्त सिद्धान्त पूर्णतः सत्य है। आने वाली पीढ़ियों को हम जैसा पर्यावरण देंगे उनको उसी में रहने को मजबूर होना होगा और उसका फल भोगना होगा। वर्तमान समय में मानव ने पर्यावरण को इतना प्रदूषित किया है कि उसका परिणाम आने वाली सन्ततियों को विभिन्न बीमारियों के रूप में भुगतना पड़ रहा है। हमारे पूर्वजों में भविष्य की दुरूहता को भाँपने की शक्ति थी इसलिए संस्कृत साहित्य में पर्यावरण संरक्षण का विस्तृत चिन्तन प्राप्त होता है। वृक्ष प्रकृति की सबसे मूल्यवान धरोहर है जो पर्यावरण के तत्त्वों में सन्तुलन स्थापित करने का कार्य करता है।

वायु, जल, ताप, भोजन, जीव–जन्तुओं में सन्तुलन स्थापित करने वाले वृक्ष के माहात्म्य का वर्णन पौराणिक साहित्य में स्थान–स्थान पर अवलोकित होता है ष्आँवले का वृक्ष सब वृक्षों से श्रेष्ठ है क्योंकि यह भगवान विष्णु को प्रिय है इसके स्मरण मात्र से मनुष्य गोदान का फल प्राप्त करता है, दर्शन से फल दुगुना तथा फल खाने से तिगुना पुण्य होता है। इसलिए सर्वथा प्रयत्न करके आँवले के वृक्ष का सेवन करना चाहिए, क्योंकि यह भगवान विष्णु को परम प्रिय है। (मेघदूतम्, 39) स्कन्दपुराण में वृक्षों को काटने का पूर्ण रूप से निषेध किया गया है और वृक्ष लगाने के माहात्म्य का वर्णन करते हुए कहा है. ष्एक लाख देव वृक्ष लगाने से जो फल प्राप्त होता है वही एक पीपल का वृक्ष लगाने से प्राप्त होता है, आँवला और तुलसी लगाने का भी ऐसा ही फल मिलता है। (संक्षिप्त स्कन्दपुराण, पृ. 425) पद्मपुराण में अलग–अलग वृक्षों को लगाने के अनेक लाभों का वर्णन करते हुए कहा गया है कि ष्वृक्षारोपण के उत्सव से सारी कामनाएँ पूर्ण होती हैं जो लोग वृक्ष लगाते हैं उन्हें परलोक में प्रतिष्ठा प्राप्त होती है।" (संक्षिप्त स्कन्दपुराण, पृ. 425) मत्स्य पुराण में वृक्ष लगाने की विधि का

विस्तार से वर्णन किया गया है। इस कार्य को धर्म और रीति–रिवाज से जोड़ा गया है। एक भी वृक्ष की स्थापना करने वाले मनुष्य को श्रेष्ठ और स्वर्ग का भागी बताया गया है–

यश्कैकमपि राजेन्द्र वृक्ष संस्थापयेन्नरः ।

सोऽपि स्वर्गे वसेद् राजन यावदिन्द्रायुतत्रयम । ।

(संक्षिप्त पद्मपुराण, पृ. 103)

पर्यावरण के प्रत्येक कारक के संरक्षण तथा संवर्द्धन हेतु मनुष्य की अन्तश्चेतना को जागृत करने के साथ ही प्रकृति के साथ पर्याप्त अनुकूलता का सिद्धान्त संस्कृत साहित्य में प्रतिपादित किया गया है। पंचमहाभूतों सहित जीव–जगत व वनस्पति के माहात्म्य का वर्णन संस्कृत साहित्य में बड़ी मात्रा में उपलब्ध होता है तथा इनके प्रति अनन्यभाव से अभिवादन की स्थापना की परिपाटी किसी और साहित्य में परिलक्षित नहीं होती–

खं वायुमग्निं सलिलं महीं च, ज्यातींषि सत्वानि दिशो द्रुमादीन।

सरित्समुद्रांश्च हरेः शरीरं, यतकिंच भूतं प्रणमेदनन्यः।

(मत्स्यपुराण 59/17)

'ऐसा आकाश, वायु, अग्नि, जल, पृथ्वी, ग्रह–नक्षत्र, प्राणी, दिशाएं, वृक्ष–लता, नदी समुद्र सभी भगवान के शरीर हैं, इस प्रकार सभी में ईश्वर को समझकर अनन्यभाव से सबको प्रणाम करता हूँ।'

निष्कर्ष

इस प्रकार सम्पूर्ण संस्कृत वाङ्मय किसी न किसी प्रकार पर्यावरण के सार्वभौमिक रूप से जुड़ा हुआ ज्ञान का वह अक्षय कोष है जो वर्तमान जीवन ही नहीं अपितु आने वाली अनेक पीढ़ियों के जीवन का चिन्तन प्रस्तुत करता है। प्रकृति के सहभाव द्वारा स्वस्थ रहकर सौ वर्षों के जीवन की आशा करता है। समस्त प्राणियों में सामंजस्य स्थापित करता है। भविष्य के संवरण तथा प्रकृति से प्रेम करने का मार्ग सुझाता है और मानवीय मूल्यों को स्थापित कर सम्वेदनशील बनाता है। भारतीय सनातन परम्परा ने प्रकृति के साथ सहचर भाव स्थापित कर ऐसी सांस्कृतिक पृष्ठभूमि का निर्माण किया है जो समर्पण की भाव–भूमि पर आधारित है।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. मनुस्मृति 4/56, पृ० 191
2. महाभारत अनुशासन पर्व 26/36,
3. विभूतियोग, गीता 10/31, पृ० 379
4. मत्स्यपुराण 108/25, पृ. 357
5. के.एल. तिवारी–एस. के. जाधव, पर्यावरण विज्ञान, पृ. 445
6. महाभारत भीष्म पर्व, 9/37–38, पृ. 20
7. मत्स्यपुराण 102/02, पृ. 340
8. चरक संहिता 28/3
9. गीता 10ध्31, पृ. 379
10. गीता 11ध्39, पृ. 412
11. महाभारत, आदि पर्व 138/25, पृ. 736
12. मत्स्य पुराण, उद्धृत मदन मोहन चौधरी, पर्यावरण और भवानी प्रसाद मिश्र का काव्य, पृ. 91

13. कालिदास, अभिज्ञानशाकुन्तलम् 4/11, पृ. 303
14. पद्मपुराण, उत्तरखण्ड 24/2
15. मत्स्यपुराण 227/91,
16. पद्मपुराण सृष्टिखण्ड 131 व 132 और
17. मत्स्यपुराण 56/7
18. गीता 10/26, पृ. 375
19. स्कन्दपुराण 247/43
20. मेघदूतम्, पूर्वमेघः / 39, पृ. 83
21. संक्षिप्त स्कन्दपुराण, पृ. 425
22. वही; पृ. 1371
23. संक्षिप्त पद्मपुराण, पृ. 103
24. मत्स्यपुराण 59/17.

❑❑❑